International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 4; June 2016; Page No. 84-86

भारतीय वाङ्मय में

शीलू कुमार प्राध्यापक
श्री सोमनाथ संस्कृत माह विद्यालय, जींद, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

उपमा के स्वरूप–निर्धारण में भरत से आचार्य विश्वेश्वर तक सादृश्य, साम्य एवं साधर्म्य शब्दों का प्रयोग होता रहा है और इन्ही तीनों में से किसी एक का सन्निवेष कर उसकी स्वरूप–मीमांसा की गई है। कतिपय आचार्यों ने इनके अतिरिक्त 'गुणलेश' अथवा इसके पर्यायवाची शब्दों या उपमानोपमेय का उल्लेख कर उपमालंकार का निरूपण किया है। भारत, दंडी, जयदेव, अप्पय दीक्षित, जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने सादृश्य के द्वारा; भामह, वामन, विद्यानाथ, विश्वनाथ, वाग्भट ने साम्य के द्वारा और उद्भट, मम्मट, रूय्यक, विद्याधर, हेमचंद्र आदि ने साधर्म्य के द्वारा उपमा के स्वरू॰ की व्याख्या की। रूद्रट समान गुणादि, तथा भोज वामन गुणलेश एवं उपमानोपमेय दोनों का ही समावेश कर देते हैं और दंडी गुणलेश के पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं। उद्भट तथा रूय्यक दोनों ने ही उपमानोयमेय का समावेश कर उपमा की परिभाष निर्मित की है। कुछ आचार्यो–जैसे मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं विश्वेश्यर पंडित– ने अन्यालंकारविभेद शब्दों का प्रयोग करते हुए अपने लक्षणों का निर्माण किया है। इस प्रकार भरत से विश्वेश्वर पंडित तक के विवेचन में विभिन्नता के दर्शन होते है।

भरत[1]

भरत के अनुसार गुण एवं आकृति के आधार पर दो पदार्थों में साम्य या सादृश्य–निबंधन को उपमा कहा जाता है। इनके लक्षण में दो तत्त्वों का उपादान किया गया– सादृश्यमूलकता एवं गुणाकृतिसमाश्रयत्व। इन्होंने उपमा के मूल में सादृश्य को मानते हुए उसका आधार गुण एवं आकृति को स्वीकार किया अर्थात् दो पदार्थों के रूप अथवा गुण में साम्य के कारण ही काव्यबंधों में उपमा संभव है। यहाँ आकृति स्थूल सादृश्य का एवं गुण सूक्ष्म सादृश्य का द्योतक है। लक्षण में 'किंचित्' शब्द इस विचार का सूचक है कि यह आवश्यक नहीं कि दो पदार्थो में सर्वांशतः सादृश्य हो, यदि उनमें थोड़ी भी समानता दिखाई पड़े तो वहाँ भी उपमालंकार होगा। भरत ने सादृश्य के आधार को ही गुण कहा है, जो रूपाकृति, गुण या क्रिया–व्यापारर में से कोई भी हो सकता है। इनहोंने बताया कि उपमा एक ही एक के साथ अथवा एक की अनेक के साथ या कहीं अनेक की एक के साथ या अनेक की अनेक के साथ– चार प्रकार से दी जाती है।

भामह[2]

भामह ने भरत के विवेचन की आगे बढ़ाते हुए कई नवीन तथ्यों का सन्निवेश किया। इनके अनुसार विरूद्ध या भिन्न उपमान के साथ देश, काल एवं क्रियादि के द्वारा उपमेय का साम्य, यदि गुणलेश से हो तो उपमालंकार होगा। भामह ने उपमा के क्षेत्र का विस्तार करते हुए उसकी सीमा देश, काल एवं क्रियादि तक पहुँचा दी। भरत ने केवल सादृश्य एवं गुणाकृति को ही उपमा माना तथा और अपने लक्षण में उपमेय एवं उपमान का भी कथन नहीं किया था। भामह ने स्पष्ट रूप से उपमेय एवं उपमान का उल्लेख कर उपमा के वास्तविक रूप की विवृति की। इन्होंने बताया कि उपमेय एवं उपमान में देश, काल क्रिया एवं स्वरूपादि के कारण भिन्नता होती है। यदि उनमें थोड़ी भी समता दिखाई पड़ेत तो वहाँ उपमा होगी। 'गुणलेशेन' के द्वारा इन्होंने यह भाव व्यक्त किया कि दो पदार्थों में 'सर्वात्मना साम्य' संभव नहीं है; अतः ऐसी स्थिति में उपमा की कल्पना असंभव हो जायगी। यदि उपमेय एवं उपमान में किसी प्रकार से अल्प सादृश्य भी हो जाय तो वहाँ उपमा हो जायेगी और इसकी स्थिति बाधित नहीं हो सकेगी। 'सर्वात्मना साम्य' की असंभवता के निवारण के लिए ही लक्ष्ण में 'गुणलेशेन' का सन्निवेश किया गया है। भामह ने मेधावि द्वारा कथित सात उपमा–दोषों–हीनता, असंभव, लिंग–भेद, वचन–भेद, विषर्यय, उपमान का अधिक्य एवं उपमान के असादृश्य– का कथन किया है।

भामह के लक्षण की विशेषता।

(क) इन्होंने उपमा के निरूपण में सर्वप्रथम उपमेय एवं उपमान का लक्षण में समावेश किया।
(ख) इन्होंने यह भी बताया कि देश, काल, क्रिया, रूप एवं स्वभवादि के कारण उपमान से उपमेय में भिन्नता संभव है।
(ग) दो भिन्न पदार्थों में साम्य–प्रतिपादन ही उपमा का उद्देश्य है।
(घ) उपमेय एवं उपमान में सर्वात्मान साम्य न होकर 'गुणलेशेन' अल्प साम्य में भी उपमा की स्थिति संभव है।

दंडी[3]

दंडी के लक्षण में भी सादृश्य को महत्त्व दिया गया। इन्होंने दो में सादृश्य–संस्थापन को ही उपमा कहा। इनके अनुसार यथाकथंचित् उद्भूत सादृश्य को ही उपमा कहा जाता है। यथाकथंचित् में यहाँ गुणक्रियादि रूप का तात्पर्य हैं एवं उद्भूत स्फुटत्व का वाचक है। स्फुट सादृश्य इस तथ्य का द्योतक है कि उपमा में सादृश्य वाच्य होना चाहिए, आश्र नहीं तथा उसमें चमत्कारजनकत्व होना आवश्यक है। इनके विवेचन में सादृश्य एवं यथाकथंचित् दोनों ही तत्त्व भरत से गृहीत हुए। दंडी के विवेचन में उपमामूलक वाचक पदों का विवेचन बड़े विस्तार के साथि किया गया है।

उद्भट[4] का लक्षण भामह से प्रभावित है। इन्होंने उपमा के विवेचन में 'चेतोहारित्व' का समावेश कर चमत्कारजनकता पर अधिक बल दिया। यहाँ 'चेतोहारित्व' का अभिप्राय चित्ताकर्षकता से ही है। उद्भट के अनुसर उपमेय एवं उपमान में आकर्षक साम्य का साधर्म्य होता है, जिसके देश, काल, गुण एवं क्रिया आदि भिन्न होते हैं तथा उसकी अभिव्यंक्ति शब्दों द्वारा या उपमावाचक पदों द्वारा होती है। उद्भट का 'मिथोविभिन्नकालादि' भामह के 'देश–काल–क्रियादिभिर्विरूद्धेन' से प्रभावित है। उद्भट ने यह विचार भामह ने ही ग्रहण किया है। दोनों की ही परिभाषाओं में उपमेयोपमान का स्पष्टतः उल्लेख है। भामह ने साम्य को उपमा कहा तो उद्भट दो पदार्थों के साधर्म्य को उपमा कहते हैं। उद्भट ने चमत्कारपूर्ण साधर्म्य का कथन कर गया विचार दिया, शेष सारी बातें भामह से लीं।

वामन[5]

वामन की परिभाषा में किसी प्रकर की नवीनता नहीं है, इन्होंने भामह

के ही विचार का अनुवाद किया है। विवेचन–क्रम में इन्होंने, अवश्य ही, कुछ नवीनता प्रदर्शित की है, जिससे उपमा का विवेचन आगे बढ़ा। इन्होंने बताया कि उपमा में उपमान को उत्कृष्ट गुणवाला एवं उपमेय को न्यून गुणवाला होना चाहिए तथा उपमेय एवं उपमा का लोकप्रसिद्ध होना आवश्यक है। उपमेय एवं उपमान के लोकप्रसिद्ध न होने पर उपमा नहीं होगी। जैसे, लोक में 'कमल के समान मुख' प्रचलित है; किंतु कोई भी कुमुद के सद्श मुख' नहीं कहता। लोक–प्रसिद्धि के विपरीत उपमेय एवं उपमान का होना औचित्यपूर्ण नहीं है। इन्होंने उपमा को अर्थालंकारों का मूल कहा है। वामन ने इस संबंध में अन्य दो नवीन तथ्यों का भी विश्लेषण किया है; वे हैं उपमा–दोष तथा उपमा के प्रयोग का क्षेत्र। इनके अनुसार प्रशंसा, निंदा तथा तत्त्वाख्यान या तत्त्व–कथन में उपमा का प्रयोग होता है। इन्होंने उपमा–संबंधी छह प्रसिद्ध दोष माने है– हीनत्व, अधिकत्व, लिंगभेद, वचनभेद, उपमेय एवं उपमान का असादृश्य एवं असंभवत्व। इस प्रकार वामन के विवेचन में निम्नांकित तत्त्वों का समावेश हुआ–

(क) उपमा की अर्थालंकारता एवं उपमा–प्रपंच का कथन।
(ख) उपमान की उत्कृष्टता तथा उपमेय की हीनता का निर्देश।
(ग) लोक–प्रसिद्ध उपमेयीमान की प्रयोजकता।
(घ) उपमा के क्षेत्र का निरूपण तथा छह उपमा–दोषों का विश्लेषण। उपर्युक्त तत्त्वों का निर्देश कर वामन ने नए विचार का सन्निवेश किया।

रूद्रट[6]

रूद्रट के मतानुसार उपमेय एवं उपमान में एक स्वीकृत समान गुण के कारण समता–स्थापन ही उपमा है। रूद्रट के लक्षण में एक गुणादि–सिद्ध समानता का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनके अनुसार जैसा गुण उपमान में विद्यमान हो, यदि वेसा ही गुण उपमेय में भी हो तो वहाँ उपमा अलंकार होगा।

कुन्तक[7]

वक्रोक्तिवादी कुन्तक ने उपमा के लक्षण–निरूपण में सौंदर्य–तत्त्व की विशिष्टता का प्रदर्शन किया। इनके अनुसार वर्णनीय या उपमेय के मनो हारित्व की सिद्धि के लिए सौंदर्योत्कर्षसंपन्न उपमान के साथ साम्य–स्थापन ही उपमा है। यहाँ उपमेय के मनोहारित्व या हृदयरंजकत्व की सिद्धि के निमित ही उससे अधिक सौंदर्यवान् उपमान के साथ उसकी तुलना का कथन किया गया है। इस उपमा का कथन सुंदर या शैली में विदग्धतापूर्ण होना चाहिए। बिना सुंदर शैली के प्रयोग के उपमा सहृदयों के लिए आनंददायक नहीं हो सकती। केवल क्रियापद के द्वारा ही उपमा का प्रतिपादन नहीं होता, अपितु इवादि पद भी उसके बोधक होते हैं। कुंतक ने उपमा–विवेचन में तीन विश्ष्टताएँ प्रदर्शित की–उपमेय के मनोहारित्व की सिद्धि, उपमान की उत्कृष्टता अर्थात् विशिष्टगुण–संपन्न उपमान के साथ उपमेय की समता एवं क्रियापदों की सुंदरता। क्रियापदो के सौंदर्य का नियोजन कुंतक की मौलिक देन है, जिसका निर्देश पूर्ववर्ती आचार्यें ने नहीं किया था।

भोज[8]

भोज के लक्षण में किसी नवीन तथ्य का समावेश नहीं हो सका। इन्होंने पूर्वाचार्यों के आधार पर ही उपमान भी प्रसिद्धि का उल्लेख किया तथा दो पदार्थों में परस्पर अवयव सामान्य के योग को उपलंकार कहा। दीक्षित ने 'चित–मीमांसा' में भोज–कुल लक्षण में दो दोष ढूँढ़ निकाले।

दीक्षित[9] द्वारा भोज के लक्षण की आलोचना इस प्रकार की गई है–

(क) प्रथम दोष यह है कि उपमेयोपमान को 'अवयवसामान्ययोगः' कहने या उपमेय एवं उपमान में अययवमूलक साम्य के कथन करने से गुण–क्रियादि की समानता पर आश्रित होनेवाली उपमा में इस लक्षण की व्याप्ति नहीं होती।
(ख) उक्त लक्षण में दूसरा दोष यह है कि 'प्रसिद्धेनानुरोधेन' के प्रयोग के कारण इस लक्षण में कलिप्तोपमा का समावेश संभव नहीं है। कलिप्तीपमा में उपमान प्रसिद्धि से रहित होता है।

मम्मट[10]

आचार्य मम्मट के लक्षण में उपमेयोपमान के साधर्म्य–प्रतिपादन पर बल दिया गया है। इनके अनुसार भेद होने पर भी उपमेय एवं उपमान में धर्म–साम्य या गुण–क्रियादि की समानता के कारण उपमालंकार होता है। लक्षण में 'भेद' शब्द के प्रयोग से यह विचार व्यक्त किया गया कि उपमान एवं उपमेय में भिन्नता होती हे। इन्होंने बताया कि यह आवश्यक नहीं कि उपमेयोपमान सजातीय हों, उनमें भिन्नता भी हो सकती है। दो भिन्न पदार्थेमें ग्रुण–क्रियादि के साम्य के कारण उपमा होती है अर्थात् दो भिन्न पदार्थों में भी साम्य–स्थापन होता है। सूत्र में उपमेय एवं उपमान शब्द का उपादान नहीं किया गया है, किंतु साधर्म्य के द्वारा उनका आक्षेप कर लिया जाता है; क्योंकि उपमेय और उपमान का ही साधर्म्य होता है। सूत्र में उपमेय एवं उपमान शब्द का उपादान नहीं किया गया है, किंतु, साधर्म्य के द्वारा उनका आक्षेप कर लिया जाता है; क्योंकि उपमेय और उपमान का ही साधर्म्य होता है, कार्यकारण का नहीं। अनन्वय अलंकार से भेद प्रदर्शित करने के लिए ही लक्षण में 'भेदे' का सन्निवेश किया गया है। अनन्वय में उपमेयोपमान में वास्तविक भेद नहीं होता और उसमें एक ही पदार्थ को उपमेय तथा उपमान बना दिया जाता है। मम्मट का लक्षण संक्षिप्त होकर भी गंभीर है तथा इसमें पूर्ववर्ती परंपरा का समाहार किया गया है, विशेषतः भामह एवं उद्भट के मत का समन्वय है।

जगन्नाथ[11] ने मम्मट की आलोचना इस प्रकार की है।

पंडितराज का कहना है कि मम्मट के लक्षण की अतिव्याप्ति व्यतिरेका–लंकारस्थ निवेष किए जानेवाले सादृश्य में हो जाती है। यदि इस लक्षण में साधर्म्य के साथ 'पर्यवसित' विशेषण लगा दिया जाय तब भी इसे निर्दुष्ट नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि साधर्म्य का साधर्म्य में ही पर्यवसान (समाप्ति) हो जाय, निषेध आदि में नहीं, उस साधर्म्य को उपमा कहते हैं, तो यह भी ठीक नहीं। कारण, अनन्वयालंकार में जो सादृश्य होता है।, उसका साधर्म्य में पर्यवसान न होने से (क्योंकि अनन्वयालंकार के सादृश्य का पर्यवसान निषेध में होता है) ही निवारण होने के कारण 'भेद होने पर' यह विशेषण व्यर्थ हो जाता है। इनका दूसरा दोष यह है कि काव्य के अलंकारों का लक्षण–निर्माण ऐसा नहीं होना चाहिए, जो लौकिक–अलौकिक–प्रधान, व्यंग्य एवं वाक्य सभी तरह की उपमा में घट नहीं सके।

रूय्यक[12] के लक्षण में 'भेदाभेदतुल्यत्वे' का सन्निवेश होने पर नया विचार आया, शेष सारी बातें मम्मट के ही अनुसार रहीं। इन्होंने बताया कि साधर्म्य की तीन स्थितियाँ होती हैं– भेद की प्रधानता, जैसे व्यतिरेक में; अभेद का प्राधान्य, जैसे रूपकादि में तथा दोनों की समता, जैसे उपमादि में भेंद एवं अभेद की समानता के होने पर जो साधर्म्य होता है। रूय्यक ने उपमेयोपमान की भिन्नत आवश्यक मानी है। लक्षण में उपमेय एवं उपमान पदों के पृथक् उपादान में दोनों का भिन्न होना रूय्यक आवश्यक मानते हैं। मम्मटोत्तर आलंकारिकों में हेमचंद्र, अग्निपुराण, शोभाकर मित्र एवंविद्याधर के उपमा–निरूपण में किसी प्रकार की नवीनता के दर्शन नहीं होते। इन्होनें या तो प्राचीन आचार्यों के मत को ग्रहण किया अथवा मम्मट एवं रूय्यक से प्रभावित हुए।

जयदेव[13]

जयदेव के उपमा–विवेचन में 'सादृश्यलक्ष्मी' के रूप में चमत्कार–तत्त्व पर बल दिया गया। इनके अनुसार चमत्कारजनक

सादृश्य के कारण उपमेय एवं उपमानमें समता स्थापित की जाती है। यहाँ उपमेय एवं उपमान के चमत्कारजनक सादृश्य का कथन किया गया है।

विद्यानाथ[14]

विद्यानाथ के लक्षण में कई प्रकार की सूक्ष्मताएँ प्रदर्शित की गई हैं। इनका कथन है कि 'जहाँ स्वतःसिद्ध, स्वयं से भिन्न, सम्मत (योग्य) अन्य (अवर्ण्य, उपमान) के साथ किसी धर्म के कारण एक ही बार बाच्य रूप में साम्य–निबंधन किया जाय, वहाँ उपमा होती है। इनके लक्षण में निम्नांकित तत्त्वों का समावेश है–

(क) इनका कथन है कि जब स्वत–सिद्ध उपमान के द्वारा उपमेय की समता का वर्णन किया जाय, तब उपमा होगी। यहाँ 'स्वतःसिद्ध' विशेषण के द्वारा उत्प्रेक्षा का निराकरण किया गया है। उत्प्रेक्षा में उपमान कल्पित होता है, स्वतःसिद्ध नहीं। विद्यानाथ के अनुसार उपमा का उपमान स्वतःसिद्ध होना चाहिए, कवि–कल्पित या संभावित नहीं।

(ख) लक्षण में 'भिन्नेन' के प्रयोग से यह विचार व्यक्त किया गया कि उपमा में उपमेय और उपमान का भिन्न होना आवश्यक है। यहाँ अनन्वय से भिन्नता दिखाने के लिए ही 'भिन्नेन' का समावेश किया गया है।

(ग) 'सम्मतेन' के द्वारा उपमान की लिंग, वचनादि की निर्दुष्टता व्यक्त की गई है; अर्थात् उपमालकार में उपमान का कवि–परंपरा से पुष्ट होना आवश्यक है तथा उसमें लिंग, वचन आदि की दृष्टि से दोष न हीं होना चाहिए।

(घ) 'धर्मतः' के प्रयोग से धर्म के आधार पर उपमेयोपमान के साम्यवर्णन का उल्लेख है तथा इससे उसकी व्यावृति श्लेष में हो जाती है। उपमा में धर्म–साम्य के आधार पर सादृश्य–कथन होता है, पर श्लेष में शब्द–साम्य होता है।

(ङ) 'अन्येन' पद के द्वारा प्रतीत के साथ उपमा का भेद किया जाता है। प्रतीत में उपमेय से उपमान की तुल्यता का वर्णन होता है।

(च) 'वाच्य' के द्वारा व्यंग्योपमा का निराकरण होता है।

(छ) एकदा या एक वाक्यगत प्रयोग के कारण उपमेयोपमा की व्यावृति होती है। उपमा में एक वाक्य होता है, पर उपमेयोपमा में दो वाक्य होते है।

दीक्षित[15] ने विद्यानाथ के लक्षण में अनेक दोष ढूंढ निकाले।

(क) दीक्षित के अनुसार 'स्वतःसिद्धेन' विशेषण अनावश्यक है; क्योंकि इससे उत्प्रेक्षा की व्यावृति नहीं होती। उत्प्रेक्षा का निवारण तो 'साम्य' शब्द के ही द्वारा हो जाता है, क्योंकि उत्प्रेक्षा में समानता न होकर संभावना होती है। यह कहना कि उपमा में उपमान स्वतः सिद्ध होता है,कल्पित नहीं, उपयुक्त नहीं है। उपमा के एक प्रकार कलिपतोपमा में उपमान कल्पित होता है ; अतः यह लक्षण उसमें नहीं घट सकता।

(ख) 'भिन्नेन' पद के द्वारा अनन्वय का निरास किया गया है ; पर कभी–कभी उपमादकोपमा में परस्पर सामान्य विशेष भाव का कथन किया जाता है अर्थात् सामान्य रू॰ उपमेय की समता विशेष रूप उपमान से की जाती है। अतः ऐसी स्थिति में विशेष को सामान्य से भिन्न नहीं माना जा सकता ; इसलिए यह विशेषण व्यर्थ है।

(ग) 'एकदा' पद के द्वारा उपमा की उपमेयोपमा से व्यावृति दिखाई गई है; किंतु परस्परोपमा नामक उपमा के भेद में वाक्यद्वय का प्रयोग होने के कारण इस लक्षण की व्याप्ति नहीं हो सकेगी।

(घ) श्लेष के निवारण के लिए 'धर्मतः' का प्रयोग भी युक्तिसंगत नहीं है। इनके अनुसार उपमा शब्दसाम्य में नहीं होती; पर रूद्रट ने शब्दसाम्य में भी उपमा की सत्ता मानी है।

इनके अतिरिक्त भी दीक्षित ने अन्य दोषों का संकेत किया है।

उपसंहारः– विभिन्न आचार्यों के मतो का अवलोकन करने से निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उपमाहलङ्कार अपने अनेक रूपरूपों में होता हुआ सारणि के समान गति से हमारे समक्ष वर्तमान रूप में आया है।

संदर्भ ग्रथ

1. नाट्यशास्त्र 16/14, 42।
2. काव्यालङ्कार 2/30।
3. काव्यादर्श 2/14।
4. काव्यालङ्कासारसंग्रह 1/15।
5. काव्यालङ्कारसूत्र पृष्ठ 186।
6. काव्यालङ्कार 9/4।
7. वक्रोवितजीवितम् 3/30, 31।
8. सरस्वतीकण्ठाभरण 4/5।
9. चित्रमीमांसा पृष्ठ 12–13।
10. काव्यप्रकाश 10/97।
11. रसगंगाधर पृष्ठ 213।
12. अलङ्कारसर्वस्व।
13. चन्द्रालोक 5/11।
14. प्रतापरूद्रीय पृष्ठ 254।
15. चित्रमीमांसा पृष्ठ 9–14।